Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. XIV, Issue No. 1, October-2017, ISSN 2230-7540

ऐतिहासिक काल में वर्ण-व्यवस्था के आधार पर अर्थोपार्जन संबंधित सीमाएँ

Dr. Sanjay Kumar*

Department of A.I.S.A.S History, Magadh University Bodh Gaya, Bihar

सार – *महाभारत में वर्ण-धर्म के पालन पर बल देते हुए कहा गया है कि ईश्वर ने चारों वर्णों को उत्पन्न किया है और उनके वर्ण-धर्मों का निर्धारण किया जिनका पालन अत्यावश्यक है। वर्ण-व्यवस्था के अनुसार नियमित कर्म करने में कोई पाप नहीं है। वर्ण-व्यवस्था के अनुसार निर्धारित कर्म को ही सर्वोच्च और श्रेयस्कर माना गया है। चाहे कर्मों का संबंध अपनी जीविका के लिए अर्थोपार्जन से ही संबद्ध क्यों न हो। पौराणिक और ऐतिहासिक ग्रंथों ने भारत के प्राचीन समाज को संतुलित एवं व्यवस्थित करने के लिए व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और नैतिक कर्मों को उसके वर्ण-व्यवस्था की सीमाओं में नियंत्रित कर निर्धारित किया है। प्रस्तुत शोध-आलेख में भारत के ऐतिहासिक काल में प्रचलित वर्ण-व्यवस्था पर आधारित अर्थोपार्जन संबंधित सीमाओं का अध्ययन किया गया है। प्राचीन समय में जीवन-यापन के लिए धन-संग्रह और अर्थोपार्जन के संबंधित सीमाओं एवं दायित्वों का विवेचन प्रस्तुत अध्ययन में प्रमुख रूप से किया गया है।*

कुंजी शब्द: *वर्ण-व्यवस्था, सर्वोच्च, जीविका, अर्थोपार्जन, पौराणिक*

----------X----------

शोध-प्रारूप एवं प्रविधि:

प्रस्तुत शोध-आलेख ऐतिहासिक पद्धति पर आधारित है। अध्ययन के केन्द्रीय विषय के रूप में महाभारतकालीन ऐतिहासिक मान्यताओं, सिद्धान्तों के तमाम महत्वपूर्ण पहलुओं को विश्लेषित किया गया है जो प्रस्तुत विषय से संबंधित तथ्यों को उद्घाटित करने में समर्थ हैं। ऐतिहासिक काल में महाभारत में जिन सामाजिक मान्यताओं, सिद्धान्तों तथा संस्थाओं का वर्णन किया गया है, वे इसकी रचनाकाल के उत्तरवर्ती काल में कहाँ तक मान्य रहे या उनसे तत्कालीन समाज पर क्या प्रभाव पड़ा? इस संदर्भ में स्मृतियों और प्राचीन मान्यताओं का भी प्रस्तुत शोध-आलेख में अध्ययन किया जायेगा। इस प्रकार पूर्ववर्ती और उत्तरवर्ती साहित्य के संदर्भ में महाभारत को मध्यवर्ती आधार बनाकर सामाजिक सिद्धान्तों एवं संस्थाओं का इस अध्ययन में पूर्ण विवेचन किया गया है।

सहायक सामग्री का संकलन:

प्रस्तुत शोध-आलेख में सूचनाओं के संकलन के लिए सहायक सामग्री का मुख्य आधार महाभारत है, परन्तु इसके साथ यह भी आवश्यक है कि इसकी रचना से पूर्व लिखे गये ग्रंथों का भी अध्ययन किया जाय क्योंकि उनसे विदित होगा कि उनमें वर्णित सामाजिक सिद्धांतों एवं संस्थाओं को इसमें कहाँ तक मान्यता दी गई है, या उनके प्रचलन का उल्लेख हुआ है, अथवा किन-किन सामाजिक नियमों को अमान्य किया गया है। ऐसे ग्रंथों में वैदिक साहित्य- विशेषकर ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्वेद, ब्राह्मण और उपनिषद् ग्रन्थ उपादेय हैं।

विश्लेषण:

कौटिल्य, मनु तथा महाभारतकारों के मत समान हैं। उनके अनुसार कृषि पशुपालन और वाणिज्य वैश्यों के कर्म हैं। अध्ययन, भजन और दपन देना भी उनके वर्णधर्म माने गये हैं। आर्थिक उत्पादन में लगे रहने के कारण विद्या से उनका सम्पर्क छुट गया और अध्ययन का मत है कि कृषि और वेद-अध्ययन ये दोनो एक दूसरे के विरोधी हैं, दोनो एक साथ नहीं चल सकते। अतएव हमें महाभारत में किसी भी विद्वान वैश्य का उदाहरण नहीं मिलता है। महाभारत में वैश्यों को अर्थोपार्जन के लिए पशुपालन एवं व्यापार उनका स्वाभाविक कर्म बताया गया है। महाभारत में वैश्यों के लिए निषिद्ध कर्मों का भी वर्णन किया गया है यथा, व्यापार के क्रम में तिल, रस और चन्दन की बिक्री नहीं करना तथा वार्ता का परित्याग नहीं करना। वैश्य समाज की

www.ignited.in

आर्थिक समृद्धि के मुख्य कर्ता हैं। उनके द्वारा वैसा किये जाने पर कृषि, पशुपालन, वाणिज्य तथा अर्थोपार्जन के अन्य साधनों में बाधा पड़ेगी। आर्थिक उत्पादन में कमी आने से राजकोष की भी क्षति होगी। महाभारतकारों के अनुसार वैश्य यदि किसी व्यक्ति की छः गायों का पालन पूरे वर्ष तक करता है तो उसे एक गाय शुल्क के रूप में मिलेगा और यदि वह उन गायों का दूध भी बेचता है तो वह उसका 7वां हिस्सा ले सकता है।

आपद्काल में वैश्य को भी जीवन-यापन के लिए दूसरों की वृति अपनाने का निर्देश दिया गया है, यद्यपि युद्ध-कर्म और सैनिक वृति क्षत्रिय के प्रधान कर्म हैं, परन्तु यह व्यवस्था दी गई है कि गौ, ब्राह्मण और वर्ण की रक्षा के लिए वैश्य भी शस्त्र धारण कर सकते हैं। मनु ने भी यह परामर्श दिया है कि आपद्काल में वे शूद्र के कर्म भी अपना सकते हैं, परन्तु इस अवस्था में उन्हें निषिद्ध कर्म नहीं करना चाहिए। गौतम ने भी आपद्काल में वैश्यों को शूद्र-वृति अपनाने का परामर्श दिया है। सामान्यतः वैश्य लोग आपद्काल में जीविका के लिए ब्राह्मणों और लोभियों का सेवन करते थे।

क्षत्रिय संकट काल में वैश्य के कर्म अपना सकते हैं, वे कृषि पशुपालन तथा वाणिज्य कर सकते हैं। मनु का भी यही विचार है। पर व्यापार में उनके द्वारा मांस, चमड़ा, पशु, विष, शराब इत्यादि के विक्रय का निषेध किया गया है। भोजायन का विचार है कि आपद्काल में क्षत्रिय व्यापार करते हुए सूद पर रूपये लगा सकते हैं जातकों से विदित होता है कि आर्थिक परिस्थितिवश क्षत्रिय भी वाणक, हस्तशिल्पी, कुम्भकार, गायक, वादक एवं पाचक के कर्म करते थें क्षत्रिय को किसी भी दशा में मिला वृति नहीं अपनानी चाहिए और न तो दान के ही आश्रय पर जाना चाहिए, क्योंकि ये दोनो क्षत्रिय के लिये अशोभनीय कर्म हैं।

क्षत्रियों में राजन्य वर्ग के विशेष उत्तरदयित्व होते हैं, अतः राजा के लिये भी आपद् धर्म की व्यवस्था की गई है। उसका मुख्य काम राष्ट्र, वेदों तथा ब्रह्मणों की रक्षा करना है। प्रश्न है कि यदि उसके पास देश की रक्षा के लिए पर्याप्त साधन न हों या ब्रह्मणों को दान देने के लिए धन न हो, देश में अराजकता की स्थिति हो एवं प्राकृतिक आपदाओं से राष्ट्र पीड़ित हो तो क्या ऐसी स्थिति में राजा शांतिपूर्ण उपायों से ही काम चला सकता है, या राजधर्म के नियमों का उल्लंघन भी कर सकता है? महाभारतकारों का विचार है कि राजा का धर्म भी काल और स्थान पर निर्भर करता है। अतः आपद्काल में उसके धर्म वैसे नहीं रह जाते जैसे कि शांतिकाल में, ऐसी स्थिति में उसको वहीं कार्य करना चाहिए जिससे उसके प्राण तथा जनता की रक्षा हो सके।

यदि राजकोष नाश हो गया हो, एवं धन की नितान्त आवश्यकता हो, तो उसे कर ग्रहण के नियमों का परित्याग कर किसी भी प्रकार से धन एकत्र करना चाहिए। वह आपद्काल में देश की रक्षा एवं युद्ध करने के निमित्त अधार्मिकों का धन बलपूर्वक अधिकृत कर सकता है, पर किसी भी परिस्थिति में उसकों ब्राह्मणों, तपस्वियों, मंदिरों, गुरूकुलों तथा स्नातकों के धन का अपहरण नहीं करना चाहिए। इस नियम के कुछ अपवाद भी महाभारत में मिलते हैं यथा, नहुश ने न केवल आपद्काल में वरन् सामान्य काल में भी ऋषियों पर कर लगाया एवं युकरवा ने ब्रह्मणों के धन को बलपूर्वक अधिकृत कर लिया था।

आपद्काल में हिंसा का अवलम्बन लेकर धन संग्रह करना पड़े तो यह पाप कर्म नहीं है। महाभारतकारों का कथन है कि किसी की भी जीविका का साधन हिंसामुक्त नही हैं ऋषि लोग भी हिंसा करते हैं। यह भी सत्य है कि भाग्य के अवलम्बन पर कोई सर्वदाजीवित नहीं रह सकता है। राजा ने तो राष्ट्र रक्षा और प्रजापालन के महान कार्य का उत्तरदायित्व ग्रहण किया है, जिसके सफल सम्पादन के लिए यदि वह हिंसा भी करता है तो उसमें कोई दोष नहीं है।

इसी क्रम में एक महत्वपूर्ण उषमा प्रस्तुत की गई है। यज्ञ में यज्ञ स्तम्भ के लिए वृक्ष काटा जाता है, परन्तु वन से उसको लगाने के लिए या उसको काटने के लिए अन्य समीपवर्ती वृक्षों को भी काटना पड़ता है, उसी प्रकार राष्ट्र रक्षा के कत्तव्य में यदि राजा को बाधकों की हत्या भी करनी पड़े तो उसे संकोच नहीं करना चाहिए। कौटिल्य ने भी आपद्काल में राजा को विभिन्न उपायों के अवलम्बन का परामर्श दिया है। आर्थिक संकट उपस्थित होने पर उसे मिथ्याचार और हत्या का भी अवलम्बन लेना चाहिए। महाभारतकारों के समान उसने भी यह परामर्श दिया है कि दुष्टों से श्रम लेने के लिए ही राजा इन उपायों को अपनाये, धार्मिकों से नहीं।

कुछ लोगों ने राजा के इस आपद्कालीन धर्म की कटु आलोचना की है। सम्भव है आपद्काल के नाम पर राजा निरंकुश हो जाय। यह आलोचना उचित नहीं प्रतीत होती है। उसके आपद्कालीन आर्थिक कर्तव्यों के अध्ययन से विदित होता है कि वैसे कामों को वह केवल आपद्काल मे ही कर सकता है, सामान्य काल में नहीं। विशेष बात यह है कि वैसी स्थिति में उसे अपनी जनता से सम्पर्क स्थापित करना चाहिए, राज्य में भ्रमण करना चाहिए और उत्पन्न संकटपूर्ण स्थिति से उनको अवगत कराते हुए धन की याचना करनी चाहिए। इतना करने पर भी यदि वे धन न दें तो उसे कोई भी उपाय काम में लाना

www.ignited.in

चाहिए, चाहे वह नैतिक हो या अनैतिक, हिंसक हों या अहिंसक।

शुद्रो के कर्मः

महाभारत में शूद्र उसे कहा गया है जो वेदाचार और सदाचार से हीन तथा सर्वभली है। वह सब प्रकार के काम करता है तथा वाह्य और आन्तरिक शौच से भी हीन है। शूद्रों द्वारा त्रिवर्णो की सेवा को प्रत्येक पहलू से उनके लिए फलदायी बताया गया है। इससे वह सभी पापों से मुक्त हो कर स्वर्ग में जाता है। मनु का भी यही कथन है। शूद्रों का धर्म, कर्म करने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि तीनों वर्णों की सेवा मात्र से ही वह धर्मनिष्ठ बन जाता है। जीविकोपार्जन के लिए उसके सेवा रूप धर्म को ही अपनाना चाहिए, अन्य कार्य नहीं। स्वामी के धनाभाव में उसे अपने धन से भी पोषण करने का परामर्श दिया गया है। महत्वपूर्ण बात यह है कि एक ओर यदि महाभारतकारों ने शूद्रों को त्रिवर्णो की सेवा मात्र का ही अधिकार दिया तो दूसरी ओर उन्हें यह भी निर्देश दिया कि वे अपनी सेवा करने वाले सेवकों का भरण-पोषण भली-भांति करें। धन के संबंध में भी शूद्रों पर पूर्ववत् नियंत्रण लगे रहे। वह निषिद्ध के मात्र ही धन संचय कर सकता था। उसके द्वारा संचित धन उसका नहीं बल्कि उसके स्वामी का होता था। शूद्रों को धन संग्रह करने की अनुमति इसलिए नहीं दी गई थी ताकि वह पाप कर्मों में प्रवृत्त न होने लगे। शूद्रों पर ऐसा नियंत्रण इसलिए लगाया गया था क्योंकि अत्यधिक धन-संग्रह कर लेने पर ये ब्राह्मणों को कष्ट देने लगते थे।

समाज में शूद्रों का कर्म तीनों वर्णों की सेवा करना था, परन्तु आपद्काल में जब उसकी भी कोई संभावना न हो तो शूद्र कैसे जीवन-यापन कर सकता है? यदि ब्रहमण की सेवा करने से उसकी जीविका नहीं चल सकती है तो उसे वैश्य की सेवा करनी चाहिए। मनु ने विपत्तिग्रस्त शूद्र के लिए विभिन्न धंाधों को अपनाने का निर्देश दिया है। आपद्काल में वह शस्त्र भी धारण कर सकता है।

प्रश्न होता है कि क्या आपद्काल के व्यतीत हो जाने पर भी लोगों को आपद्कालीन धर्म का ही पालन करना चाहिए? महाभारतकारों का कथन है कि आपद्काल, सामान्यकाल से भिन्न होता है, इसलिए परिस्थिति से विवश होकर वर्ण -धर्म का परित्याग किया जाता है, तो वह समाज में वर्ण संकरता उत्पन्न करता है। आपद्धर्म का पालन केवल आपद्काल में ही करना चाहिए। एक मुख्य बात यह भी है कि आपद्काल के समाप्त हो जाने पर लोगों को प्रायश्चित द्वारा आत्मशुद्धि करनी चाहिए।

धर्मशास्त्रकारों ने भी कर्तव्यच्युत ब्रहमण को शूद्र-तुल्य माना है। सद्कर्म करने पर मनुष्य महान और दुष्कर्म करने से नीच बनता है। यदि नीच वर्ण का व्यक्ति भी ज्ञानी, बुद्धिमान और सात्विक वृति वाला हो तो उसे ब्रहमण मानना चाहिए। ऐतूष के पुत्र कवश का उदाहरण उल्लेखनीय है। ऐतरेय महिदास का भी उदाहरण इसी प्रकार का है। कर्म और ज्ञान के बल पर शूद्र भी ब्राहमण बन सकता था। पर ऐसे दृष्टान्त अत्यल्प हैं एवं शूद्रों की स्थिति ज्ञान एवं सद्कर्म के कारण परिवर्तित नहीं हो सकती थी, वे शूद्र ही रहते थे।

निष्कर्षः

प्राचीन भारत की आर्थिक व्यवस्था का आधार वर्ण-व्यवस्था का पालन करना था क्योंकि उसके परित्याग से समाज में अव्यवस्था उत्पन्न होने की संभावना रहती थी। अतएव समाज को व्यवस्थित रूप प्रदान करने के लिए कुछ सीमाओं का निर्धारण किया गया था। व्यक्ति अपने वर्ण-व्यवस्था की सीमाओं में नियंत्रित रहकर ही जीविका के लिए अर्थोपार्जन के साधन का संग्रह करता था। भारत के प्राचीन धर्मग्रंथों और आख्यानों आदि में ऐसा माना गया था कि यदि व्यक्ति अपने वर्ण-व्यवस्था की सीमाओं में रहकर अर्थोपार्जन के लिए निर्धारित कर्मों को नियमित रूप से करता है तो उसे समृद्धि प्राप्त होती है। व्यक्ति यदि अपने स्वाभाविक कर्मों को छोड़कर अर्थोपार्जन के लिए धन संग्रह करता है तो उसे ईश्वरीय दण्ड भी भोगना पर सकता है। अतः समृद्धि एवं मोक्ष प्राप्ति के लिए स्वाभावकि कर्मों के द्वारा अर्थोपार्जन को सदैव कल्याणकारी माना गया है।

संदर्भ सूचीः

1. कौटिल्य अर्थशास्त्र।
2. कठोपनिषद्।
3. स्टडीज इन हिस्ट्री एण्ड कल्चर; लाल योगेन्द्र नाथ।
4. प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन; वासुदेव उपाध्याय।
5. सम आस्पेक्ट्स ऑफ़ द उपनिषद; बी0 पी0 राय।
6. शिक्षा के संदर्भ में भारत का प्राचीन दृष्टिकोण; दत्त एवं पी0 डी0 शर्मा।
7. महाभारत- 57, 197, 39, 340 ।
8. अनुशासन पर्व- राधेश्याम शर्मा।

9. महाभारत के सामाजिक सिद्धान्त एवं संस्थायें- राधेश्याम शर्मा।

10. स्मृति चन्द्रिका-भाग-प्रथम।

Corresponding Author

Dr. Sanjay Kumar*

Department of A.I.S.A.S History, Magadh University Bodh Gaya, Bihar

www.ignited.in